

डॉक्टर राही मासूम रज़ा उनकी जिंदगी का मकसद था 'हिन्दोस्तानियत' की तलाश

डॉक्टर राही मासूम रज़ा नहीं रहें। यह सुनकर सहसा विश्वास नहीं होता अभी तो राही को नहीं जाना था, अभी तो उन्हें बहुत काम करना था, 'आधा गांव' का दूसरा अंक लिखना था, गंगा की गोद में खेलना था व गंगौली (गाजीपुर) और अलीगढ़ जाकर रहना था। सांप्रदायिकता के खिलाफ जंग लड़नी थी और सबसे बढ़कर अपने धर्मालंबियों की संख्या बढ़ाने के लिए धर्म प्रचार करना था, जिसे वह 'हिन्दोस्तानियत' के नाम से पुकारते थे। दरअसल, मेरी नजर में राही की मौत किसी साहित्यकार फिल्मी 'डायलॉग' स्क्रिप्ट लेखक की मौत नहीं, बल्कि एक सच्चे हिन्दुस्तानी की मौत है, जिसे वह देश की सबसे छोटी अकलियत (अल्पसंख्यक) कहते थे।

राही को ज्यादातर लोग 'आधा गांव' के लेखक तथा दूरदर्शन के धारावाहिक 'महाभारत' के डॉयलाग लेखक के रूप में जानते हैं। लेकिन राही की शख्सियत इस सबसे बिल्कुल मुख्तलिफ थी। फिल्मी लेखक व बंबई जाने पर उन्हें अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग के कुछ संकीर्ण दिमागवाले प्रोफेसरों और पापी पेट ने मजबूर किया था। अन्यथा वह तो अपने गांव गंगौली में रह कर खुश थे और ऐसे हिन्दुस्तान का सपना देखा करते थे, जिसकी सियासत में मजहब की कोई जगह न हो और जहां हिन्दोस्तान की गंगा-जमुनी तहजीब (संस्कृति) सबसे ऊपर हो। उनके लिए गंगा सर्वोच्च थी, जिसे वह अपनी मां और देश की सबसे बड़ी सांस्कृतिक धरोहर (राही ने एक जगह लिखा है मेरी तीन मां हैं-नफीसा बेगम जिनके पेट से पैदा हुआ, गंगा जिसकी गोद में खेला और अलीगढ़ युनीर्विसटी जहां

पढ़ा) मानते थे और शायद पंडित जवाहरलाल नेहरू के अलावा गंगा का उतना सुंदर वर्णन किसी और ने नहीं किया, जितना राही ने।

पहली अगस्त 1927 को गाजीपुर जिले के गंगौली गांव में जन्मे राही की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा गंगा किनारे गाजीपुर शहर के एक मुहल्ले में हुई थी। बचपन में टांग में पोलियो हो जाने के कारण उनकी पढ़ाई कुछ सालों के लिए छूट गई, लेकिन इंटरमीडिएट करने के बाद वह अलीगढ़ आ गए और यहीं से एम.ए. करने के बाद उर्दू में 'तिलिस्म-ए-होशरुबा' पर पी.एच.डी. की। 'तिलिस्म-ए-होशरुबा' उन कहानियों का संग्रह है, जो पुराने दौर में मुसलमान औरतें (दादी-नानी) छोटे बच्चों को रात में कहानी बतौर सुनाया करती थीं। पी.एच.डी. करने के बाद राही अलीगढ़ मुसलिम विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग में प्राध्यापक हो गए और अलीगढ़ के ही एक मुहल्ले बदरबाग में रहने लगे। यहीं रहते हुए राही ने 'आधा गांव', 'दिल एक सादा कागज', 'ओस की बूंद', 'हिम्मत जौनपुरी' उपन्यास व 1965 के भारत-पाक युद्ध में मारे गए शहीद वीर अब्दुल हमीद की जीवनी 'छोटे आदमी की बड़ी कहानी' लिखी। उनकी यह सभी कृतियां हिन्दी में थीं। इससे पहले वह उर्दू में एक महाकाव्य '1857' तथा छोटी-बड़ी उर्दू नज़्में व गज़लें लिखे चुके थे, लेकिन उर्दूवालों से इस बात पर झगड़ा हो जाने पर कि हिन्दोस्तानी जबान सिर्फ रस्मुलखत (फारसी लिपि) में ही हो सकती है, राही ने देवनागरी लिपि में लिखना शुरू किया और अपने अंतिम समय तक वह इसी लिपि में लिखते रहे।

राही पैदाइश बागी थे और ऐसी किसी चीज पर 'कंप्रोमाइज' नहीं करते थे, जो उनके दर्शन, विचार व सिद्धांत के खिलाफ हो। इसलिए उनकी ऐसे लोगों से कभी नहीं पटी, जो छोटी-छोटी बातों के लिए 'कंप्रोमाइज' कर लेते

हैं और दोगला चरित्र अख्तियार कर लेते हैं। अपनी साफगोई और बेबाकी के कारण राही को अलीगढ़ विश्वविद्यालय के उर्दू विभाग से निकाल दिया गया। उन पर आरोप लगाया गया कि वह दुश्चरित्र हैं। असलियत यह है कि उन्होंने अपनी मौजूदा विधवा पत्नी नैयर से प्रेम विवाह कर लिया था और यह बात अलीगढ़ के दकियानूसी लोगों को पसंद नहीं थी। इसी इल्जाम में राही को अलीगढ़ विश्वविद्यालय से निकाल दिया गया। स्वयं राही के अनुसार 'वह तो दिल्ली में उन्हें पनाह देने के लिए राजकमल प्रकाशन की मालकिन शीला संधू मौजूद थीं। नहीं तो उस भरी दोपहर में उन्हें कहां दर-दर भटकना पड़ता।'

आश्चर्य की बात तो यह है कि अलीगढ़ विश्वविद्यालय के जिस उर्दू विभाग ने राही को बेइज्जत करके निकाला था, इस वर्ष जनवरी माह में उसी उर्दू विभाग ने राही का सम्मान किया और उनकी शान में कसीदा पढ़ा। इसी स्वागत सम्मान में बोलते हुए राही ने कहा कि 'एक समय था, जब मुझे इस विभाग से निकाला गया था और आज यही विभाग मेरा सम्मान कर रहा है।' अलीगढ़ के उर्दू विभाग ने राही का यह सम्मान 'महाभारत' धारावाहिक से राही को मिली प्रसिद्धि के बाद किया।

अलीगढ़ छोड़ने के बाद राही ने नज़्म की शकल में अपने दोस्त शैलेश जैदी को एक खत लिखा था, जिसकी शीर्षक था 'चांद तो अब भी निकलता होगा।' इस खत में राही ने लगभग रोते हुए अपने शहर की खैरियत मालूम की थी और अपने दोस्त से पूछा था एक बच्चे की मानिंद कि विश्वविद्यालय परिसर का क्या हाल है? चांद कैसे निकलता है? और सूरज कैसे? और जिन पेड़-पौधों को मैं छोड़ आया था, वो कैसे हैं? इसी नज़्मे का एक शेर था—

ऐ सबा तू तो उधर से गुजरती होगी

तू ही बता अब वहां मेरे पैरों के निशां कैसे हैं

और एक शेर में पूरे शहर पर कटाक्षा था—

मैं तो पत्थर था फेंक दिया, ठीक किया

अब उस शहर में लोगों के शीशे के मकां कैसे हैं?

अलीगढ़ छोड़ने के बाद राही कुछ समय दिल्ली में रहे। फिर वह रोजी-रोटी की तलाश में बंबई चले गए। यह दौर राही की जिन्दगी का सबसे बुरा दौर था और शीला संधु व उनके दो-चार दोस्तों के अलावा राही का साथ देनेवाला कोई नहीं था।

राही फिल्म लेखन को घटिया काम नहीं मानते थे, 'सेमीक्रिएटिव' मानते थे इसलिए मैंने शुरु में कहा कि फिल्म लेखन राही का बुनियादी मकसद नहीं था जरिया-ए-माश (जीवकोपार्जन का तरीका) था। उनकी तड़प थी 'हिन्दोस्तानियत' की तलाश, जिसे वह अपने सीने से लगाकर ले गए।

राही की जिन्दगी का सबसे बड़ा सदमा देश का विभाजन था, जिसके लिए वह मुसलिम लीग, कांग्रेस और धर्म की राजनीति को दोषी मानते थे। उनके लिए सबसे बड़ा धर्म 'हिन्दोस्तानियत' थी और जिसकी संस्कृति को वह अपनी सबसे बड़ी धरोहर व विरासत मानते थे। इस 'हिन्दोस्तानियत' को नुकसान पहुंचानेवाली वह हर उस शक्ति के खिलाफ थे, चाहे वह मुसलिम सांप्रदायिकता की शकल में हो या हिन्दू सांप्रदायिकता की शकल में। इसीलिए वह जीवनपर्यन्त इन शक्तियों की आंख की किरकिरी बने रहे।

अपने पहले उपन्यास 'आधा गांव' में राही ने उन चरित्रों का बहुत ही सजीव चित्रण किया है, जो धर्म के नाम पर विद्वेष फैलाने, धर्म का राजनीतिकरण करने और अन्ततः देश का विभाजन कराने में सफल रहे। राही

के संपूर्ण लेखन में यहीं 'कंसर्न' प्रमुखता से मिलते हैं। सांप्रदायिकता की राजनीति, देश का विभाजन, इससे उजड़े और प्रभावित हुए गरीब व साधारण लोग, खासकर संयुक्त पंजाब-बंगाल, उत्तरप्रदेश व बिहार के लोग। तबाह होती हिन्दुस्तानी संस्कृति, गिरते हुए सामाजिक मूल्य, लुप्त होती ढ़ाई हजार वर्ष पुरानी सभ्यता वगैरह।

यो तो डॉक्टर राही मासूम रजा से मेरी कई मुलाकात हुई, लेकिन दिसंबर 1990 में हुई उनसे आखिरी मुलाकात अब एक ऐतिहासिक यादगार बन गई है। उस समय उत्तर भारत खासकर पश्चिमी उत्तरप्रदेश में सांप्रदायिक माहौल बड़ा तनावपूर्ण था। अलीगढ़ और उसके आस-पास खौफलाक दंगे हो रहे थे। मैं चूंकि उन दंगों का प्रत्यक्षदर्शी था, इसलिए बहुत हताश और सहमा हुआ था। आशा की कोई किरण दिखाई नहीं पड़ रही थी। ऐसे निराशाजनक माहौल में राही ने मेरी हौसला अफ़जाई की। मैं उनसे बार-बार कह रहा था कि बंबई में बैठकर आप वहां की स्थिति का अंदाजा नहीं लगा सकते, लेकिन राही लगातार लोगों के एक-दूसरे से इतरे गहरे संबंध हैं कि इन दंगों से टूटनेवाले नहीं हैं। उन्होंने कहा था कि लोग जब यह समझ जाएंगे कि धर्म का इस्तेमाल सत्ता पाने या अपनी नेतागिरी चमकाने के लिए राजनीतिक लोगों ने किया है, तो फिर बलवे नहीं होंगे। आज सोचता हूं कि उत्तरप्रदेश के संदर्भ में उनकी यह टिप्पणी कितनी सटीक थी।

धारावाहिक 'महाभारत' की स्क्रिप्ट लिखते समय राही ने व्यास की 'महाभारत' को सौ से अधिक बार पढ़ा था। हिन्दी-अंग्रेजी, संस्कृत, फारसी, उर्दू लगभग उन तमाम भाषाओं में, जिनमें महाभारत उपलब्ध हैं। 'गीता' लिखते समय वह अलीगढ़ आ रहे थे। उनका कहना था कि गीता 'महाभारत' का सार है और इसे वह सुकून से लिखना चाहते हैं। भाजपा नेता अटल

बिहारी वाजपेयी ने राही पर आरोप लगाया था कि वह 'महाभारत' को तोड़-मरोड़ कर पेश कर रहे हैं और कृष्ण चरित्र को बदलकर दिखा रहे हैं। इस पर राही ने अटल जी को फोन करके पूछा था कि क्या आपने यह बयान दिया है? और यह कि क्या आपने 'महाभारत' पढ़ी है? अटल जी के 'हां' कहने पर वह उन पर बिगड़ गए और कहा कि आप झूठ बोलते हैं। यदि आपने 'महाभारत' पढ़ी होती, तो मुझे यकीन है कि आप जैसा पढ़ा-लिखा व्यक्ति यह बयान नहीं देता और अटल जी लाजवाब हो गए।

वैसे बहुत कम लोगों को मालूम है कि जनसंघ नेता स्व. दीनदयाल उपाध्याय पर बनी 'डॉक्युमेंटरी' की स्क्रिप्ट लिखवाने के लिए भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाणी राही के घर गए थे। राही ने स्क्रिप्ट लिखी और जब आडवाणी जी ने उसकी फीस पूछी, तो राही ने कहा कि दिल्ली में आपके साथ एक वक्त का खाना खा लूंगा।

राही की मौत मेरे लिए एक जाती सदमा है और उन तमाम हिन्दोस्तानियों के लिए भी, जो अपने इस मुल्क, इस गुलशन को सर-सब्ज और फलता-फूलता देखना चाहते हैं। जिन्हें इस अजीम मुल्क के इतिहास, इसकी संस्कृति, इसकी मिट्टी, इसके नदी-नालों से प्यार है। राही की याद उन सबको हमेशा सताती रहेगी।

कुरबान अली

राही के दो संक्षिप्त लेख

फूलों की महक पर लाशों की गंध

यह सागर मंथन की घड़ी है। अमृत भी निकलेगा और विष भी। यह पता नहीं कि विष पीनेवाले कितने निकलेंगे, क्योंकि अमृत पीने वालों की तो भीड़ खड़ी है और मै। यह सोच रहा हूँ कि क्या शंकर भगवान के उत्तराधिकारियों की संतान बिल्कुल ही खत्म हो चुकी है? यदि नहीं तो हमारे महान भारतवर्ष के बुद्धिजीवी कहां हैं? क्या मैं यह समझ लूं कि यह सन्नाटा बांझ है और इसकी कोख में कोई तूफान नहीं! सामाजिक कार्यकर्ताओं, अध्यापकों, कवियों और लेखकों ने चुप क्यों साध रखी है? बस वही क्यों बोल रहे हैं जिनका पेशा राजनीति है?

जहांगीर ने कहा था कि जो जमीन पर कहीं जन्नत है तो वह यहीं है। मैं उसी जन्नत को तलाश कर रहा हूँ और वह मुझे दिखाई नहीं दे रही है। मेरे चारों तरफ तो बेरोजगारी, भूख, जन-हरिजन हिन्दू-मुसलमान, सिख-हिन्दू लाशों का एक चटियल मैदान पड़ा है। न आदम न आदमजाद। फूलों की महक पर लाशों की महक की तहें जमी हुई। स्कूलों में नफरतों की किताबें खुली हुई। कानून की बंदूकों में सांप्रदायिकता की गोलियां वास्तव में मुझ जैसे लाखों-लाख भारतीय नागरिकों का सीना छेद गई है। परन्तु क्या पी.ए.सी. को बुरा-भला कह कर कलेजा ठंडा कर लेना काफी है? मैं सवाल चाहता हूँ कि यदि पी.ए.सी. में मुसलमानों का बहुमत होता तो क्या होता? क्या मलियाना में सर झुकाए खड़े हिन्दू लाशें गिर रहे होते।

इसलिए खतरे की बात यह नहीं कि कहां हिन्दुओं ने मुसलमानों को मार गिराया और कहां सिखों ने हिन्दुओं को! खतरे की बात यह है कि हम धर्म के आधार पर लाशों को छांट कर अलग-अलग रखने लगे हैं!

मैं जानना चाहता हूँ कि हम कहते तो यह हैं कि हर पांचवें बरस हम भारत के आदमी गिनने निकलते हैं, पर सच तो यही है कि हम हिन्दू, मुसलमान, ब्राह्मण, हरिजन गिनकर लौट आते हैं। इसीलिए कोई मुझे यह नहीं बता पाता कि हिन्दुस्तान में आदमी कितने हैं! और शायद इसीलिए यहां कोई आदमी की समस्या पर सोचने के लिए तैयार नहीं है। किसी को शायद ठीक से पता ही नहीं कि यहां आदमी रहते भी हैं कि नहीं रहते! वोट तो धर्मों के पास हैं। जातियों के पास हैं। क्षेत्रों के पास है। लोकतंत्र का यही तो एब है कि यह वोट चबाकर जीता है! यदि वोटों तक इसका हाथ यूँ नहीं पहुंचेगा तो यह वोट तोड़ने के लिए लाशों के ढेर पर भी खड़ा हो जाएगा। इसलिए आवश्यक है कि किसी तरह वोटों को धर्म, जाति और क्षेत्र से, मुक्ति दिलाई जाए।

मेरा कहना है कि हम चार बरस तक सांप्रदायिकता के विरोध में डटकर भाषण देते हैं परन्तु पांचवें बरस धर्मवाद और जातिवाद के नाम पर वोट मांगते हैं।

जरूरी बात यह है कि पहले चुनाव कानूनों में परिवर्तन किए जाएं। उन्हें धर्म, जातिवाद और क्षेत्रवाद से मुक्ति दिलाए जाए। जिसका एक तरीका यह भी हो सकता है कि संशोधन द्वारा संविधान में यह सुधार किया जाए कि व्यक्ति से चुनाव लड़ने का अधिकार ले लिया जाए।

‘रामायण’ हिन्दुस्तान के हिन्दुओं की धरोहर है?

क्या रामायण सिर्फ हिन्दुस्तान के हिन्दुओं की धरोहर है? क्या उसकी झोली में, समूचे हिन्दुस्तान की झोली में डालने के लिए कुछ भी नहीं? धरोहर का आधार क्या है? श्री राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं या हिन्दू मर्यादा पुरुषोत्तम? क्या यह धारावाहिक केवल हिन्दुओं के लिए बनाया और दिखाया गया? यदि ऐसा है तो यह सीरियल दिखला कर दूरदर्शन ने भारत वर्ष के साथ अच्छा नहीं किया। दूरदर्शन इसलिए नहीं है कि वह धर्मों और मजहबों की डोली उठाये—उठाये घर—घर जाए। कल मुसलमान मांग करेंगे कि मुहर्रम के दस दिनों में दूरदर्शन पर केवल मुहर्रम के कार्यक्रम आया करें, तब दूरदर्शन क्या करेगा? कल यदि ईसाइयों ने मांग की कि क्रिसमस के दिनों में बाइबिल पर आधारित कार्यक्रमों के सिवा कुछ और दिखलाया ही न जाए तब दूरदर्शन क्या करेगा? यही मांग बौद्ध और जैन समुदाय के लोग भी कर सकते हैं।

बाल्मीकि और तुलसीदास का उत्तराधिकारी मैं भी हूँ और यह बात 'रामायण' और 'महाभारत' को हिन्दू—काव्य माननेवाले जितनी जल्दी समझ जाए उतना ही अच्छा होगा। यह पता लगाने के लिए एक सरकारी कमीशन बिठाना चाहिए कि हमारे भारत वर्ष में किस चीज का आधार क्या है? हमारी राजनीति आधारहीन और दिशाहीन है। अपनी—अपनी जेबों के सिवा कहां जाना है और किधर से जाना है। यह नहीं मालूम.... तो फिर यदि रामानंद सागर की रामायण दिशाहीन निकले, तो क्या शिकायत? यह सीरियल देखकर मुझे लगा कि 'और इनसान मर गया' लिखने में जो इनसान मर गया था, उसी ने यह धारावाहिक लिखा है। क्योंकि इस धारावाहिक में कोई बयान, कोई स्टेटमेंट नहीं है। यह तक पता नहीं चलता कि इस धारावाहिक में जिन मूल्यों के नीचे लकीर खींची गई है वे मूल्य क्या हैं और स्वयं रामानंद सागर अपने धारावाहिक के तिराहे पर कहां खड़े हैं? यह कहना क्या

चाहते हैं? और दूरदर्शनवाले इस धारावाहिक के द्वारा भारत वर्ष के नागरिकों तक कौन-सा पैगाम भेजने की कोशिश कर रहे थे?

धरोहर का आधार क्या है?

धर्मों में बांटनेवाले लोग।

हिन्दुस्तानी राजनीति में धर्म कोई नई चीज नहीं है। हमारा तो नारा ही था कि 'हिन्दू, मुसलिम, सिख, ईसाई—सब आपस में भाई—भाई'। हमारे राष्ट्रीय नेताओं ने शुरू से ही इसका ध्यान रखा था कि हिन्दुस्तान भीतर से हमेशा बंटा रहे कि हर हिन्दुस्तानी अपने देश की जगह अपने धर्म को अपनी पहचान माने। हमारे नेताओं ने यह कभी नहीं कहा कि हम हिन्दुस्तानी हैं। वे हमेशा इस बात पर जोर देते रहे कि हम धर्मों में बंटे हुए लोग हैं। कि हम हैं तो अलग-अलग पर हमें लड़ना नहीं चाहिए। यही कारण है कि हमारी राजनीति उस अंबिका की तरह है जिसने ऋषि व्यास को देखकर आंखें बंद कर ली थीं। हम जिस राजनीति के उत्तराधिकारी हैं वह सिर्फ धृतराष्ट्रों ही को जन्म दे सकती है। यदि हमें जीना है और देश को आगे ले जाना है तो हमें इन अन्धे नेताओं की उंगली पकड़कर चलना छोड़ना पड़ेगा।